नियमसार जीव अधिकार १४वीं गाथा का अन्तिम कलश। २६ (वाँ कलश)।

क्वचिल्लसति सद्गुणैः क्वचिदशुद्धरूपैर्गुणैः,
क्वचित्सहजपर्ययैः क्वचिदशुद्धपर्यायकैः।
सनाथ-मपि जीव-तत्त्व-मनाथं समस्तैरिदं,
नमामि परिभावयामि सकलार्थसिद्ध्यै सदा।।२६।।

** विलसना=दिखाई देना; दिखना; झलकना; आविर्भूत होना; प्रगट होना।*

नीचे श्लोकार्थ। जीवपदार्थ है न? जीवपदार्थ।

श्लोकार्थः—जीवतत्त्व, क्वचित् सद्गुणों सहित विलसता है,... निर्मल गुण की पर्याय सहित **दिखाई देता है;...** गुण तो त्रिकाल हैं परन्तु सद्गुणों अर्थात् पर्याय। ऐसे गुण से वह विलसता है, आविर्भाव होता है। जो शक्तिरूप से गुण हैं, वे आविर्भावरूप से विलसते हैं, दिखायी देते हैं। **दिखाई देता है; झलकता है।... क्वचित् अशुद्धरूप गुणों सहित विलसता है;...** व्यंजनपर्याय बिना के गुणों की अशुद्धपर्याय, उसे यहाँ अशुद्धरूप गुण कहा गया है। यह क्या कहा?

मुमुक्षु : व्यंजनपर्याय के अतिरिक्त अर्थपर्यायें हों...

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थपर्यायें कही नहीं। व्यंजनपर्याय के अतिरिक्त गुण, उनकी जो पर्याय अशुद्ध है, उसकी यह बात है। बहुत स्पष्ट हो, ऐसा नहीं है। यह धीरे-धीरे समझ में आये, ऐसा है। सेठी! १५ वीं गाथा का विषय बहुत सूक्ष्म आयेगा। इस अधिकार के समय किसी समय तुम होंगे या नहीं, यह खबर नहीं। नियमसार की शुद्धकारणपर्याय के समय किसी समय यहाँ थे?

क्वचित् सहज पर्यायों सहित विलसता है... यह गुण की निर्मल अवस्था-शुद्धपर्यायें। **क्वचित् अशुद्ध पर्यायों...** यह व्यंजनपर्याय। **इन सबसे सहित होने पर भी,...** जीवतत्त्व पर्याय में इस प्रकार से **होने पर भी, जो इन सबसे रहित है...** वस्तु जो जीवतत्त्व ध्रुव है, वह ऐसे सब भेदों से रहित है। समझ में आया? किसी समय निर्मल शुद्ध ज्ञानगुण आदि की प्रगट अवस्था से शोभता हे, किसी समय अशुद्धगुण अर्थात् विकारी पर्याय आदि से शोभता है। व्यंजनपर्याय के अतिरिक्त। किसी समय सहज पर्यायें केवलज्ञान आदि की, उनसे शोभता है। किसी समय अशुद्ध व्यंजनपर्यायों से विलसता है। दिखायी दे, दिखायी दे, ऐसे दिखायी दे - ऐसा कहते हैं। **इन सबसे सहित होने पर भी,...** पाठ है न? **सनाथमपि जीवतत्त्वमनाथं...** इसकी व्याख्या की। स्वाभाविक। ये सब भाव पर्याय में होने पर भी, परन्तु इन पर्यायरहित।

जो इन सबसे रहित है — ऐसे इस जीवतत्त्व को मैं सकल अर्थ की सिद्धि के लिए सदा नमता हूँ,... ध्रुव तत्त्व, जिसमें अनन्त-अनन्त शान्ति-सामग्री आदि अनन्त पड़ी

है। ध्रुवरूप सामान्य स्वभाव। ये सब पर्यायें होने पर भी, पर्याय का आश्रय / लक्ष्य करनेयोग्य नहीं है। आश्रय करनेयोग्य नहीं है – ऐसा कहते हैं। जाननेयोग्य भले हो, परन्तु भगवान आत्मा जो पर्यायों की निर्मलता, सहजता इत्यादि दशा में होने पर भी, वस्तु जो ध्रुव चैतन्य नित्य (रही है), ऐसे **जीवतत्त्व को मैं सकल अर्थ की सिद्धि के लिए...** मेरी शान्ति और आनन्द की पूर्ण प्रयोजनदशा-मुक्ति के लिये **सदा नमता हूँ,...** मेरा झुकाव ही सदा ध्रुव पर है, ऐसा कहते है, उसे मैं ध्रुव को भाता हूँ, ध्रुव को नमता हूँ और उसे **भाता हूँ।** है न दो? **परिभावयामि** और **नमामि** दो है। भगवान आत्मा जीवतत्त्व, ऐसी पर्यायवाला होने पर भी, मैं तो जीवतत्त्व, जो अखण्ड अभेद ध्रुव है, वह पर्यायरहित तत्त्व है। समझ में आया?

ऐसे इस जीवतत्त्व को मैं सकल अर्थ की सिद्धि के लिए... मेरे केवलज्ञान और परमानन्द की प्राप्ति के लिये मैं उस ध्रुव को **सदा नमता हूँ,...** मेरा झुकाव उसमें है और ध्रुव की भावना मैं करता हूँ। कहो, समझ में आया? ऐसा मार्ग कैसा होगा यह? पर्याय ऐसी, तथापि वस्तु पर्यायरहित; और पर्यायरहित को मैं भाता हूँ। 'भाता हूँ' – यह पर्याय है, परन्तु भाना ध्रुव को। **नमता हूँ,...** यह पर्याय है। **भाता हूँ।** यह पर्याय है। परन्तु भाता किसे है? और नमता किसे है? ध्रुव को। समझ में आया?

भगवान सर्वज्ञ ने ऐसा जीव देखा है। उसकी पर्यायों में ऐसे प्रकार होने पर भी, अवस्था में यह सब दशायें होने पर भी वस्तु तो उन अवस्थारहित है। उन अवस्थारहित वस्तु है, उसे मैं नमता हूँ। मेरा अन्तर की दृष्टि का झुकाव वहाँ गया है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? उसे मैं **सदा नमता हूँ,...** वापस ऐसा लिया है न? **सदा 'नमामि परिभावयामि'** निरन्तर। भगवान आत्मा पर्याय के भेदरहित, ऐसे द्रव्यस्वभाव के नमन में, आदर में, निरन्तर मेरा आदर है। कहो, समझ में आया? निमित्त का आदर नहीं, विकल्प का नहीं, ऐसे पर्याय के भेद का भी आदर नहीं। यह १४वीं गाथा हुई। अब यह १५वीं गाथा। लो, यह, शशीभाई, प्रवीणभाई इसके लिये आये हैं न! प्रवीणभाई! खबर थी? ठीक। भाई आया नहीं? मनीष। पढ़ने में होगा।

गाथा-१५

णरणारयतिरियसुरा पज्जाया ते विहावमिदि भणिदा।
कम्मोपाधिविवज्जियपज्जाया ते सहावमिदि भणिदा।।१५।।

नरनारकतिर्यक्सुराः पर्यायास्ते विभावा इति भणिताः।
कर्मोपाधिविवर्जितपर्यायास्ते स्वभावा इति भणिताः।।१५।।

स्वभावविभावपर्यायसङ्क्षेपोक्तिरियम्। तत्र स्वभावविभावपर्यायाणां मध्ये स्वभावपर्यायस्तावत् द्विप्रकारेणोच्यते। कारणशुद्धपर्यायः कार्यशुद्धपर्यायश्चेति। इह हि सहजशुद्धनिश्चयेन अनाद्यनिधनामूर्तातीन्द्रियस्वभावशुद्धसहजज्ञानसहजदर्शनसहजचारित्रसहजपरमवीतरागसुखात्मकशुद्धान्तस्तत्त्वस्वरूपस्वभावानन्तचतुष्टयस्वरूपेण सहाञ्चितपञ्चमभावपरिणतिरेव कारणशुद्धपर्याय इत्यर्थः। साद्यनिधनामूर्तातीन्द्रियस्वभावशुद्धसद्भूतव्यवहारेण केवलज्ञानकेवलदर्शनकेवलसुखकेवलशक्तियुक्तफलरूपानन्तचतुष्टयेन सार्धं परमोत्कृष्टक्षायिकभावस्य शुद्धपरिणतिरेव कार्यशुद्धपर्यायश्च। अथवा पूर्वसूत्रोपात्तसूक्ष्मऋजुसूत्रनयाभिप्रायेण षड्द्रव्यसाधारणाः सूक्ष्मास्ते हि अर्थपर्यायाः शुद्धा इति बोद्धव्याः। उक्तः समासतः शुद्धपर्यायविकल्पः।

इदानीं व्यञ्जनपर्याय उच्यते। व्यज्यते प्रकटीक्रियते अनेनेति व्यञ्जनपर्यायः। कुतः? लोचनगोचरत्वात् पटादिवत्। अथवा सादिसनिधनमूर्तविजातीयविभावस्वभावत्वात्, दृश्यमानविनाशस्वरूपत्वात्।

व्यञ्जनपर्यायश्च पर्यायिनमात्मानमन्तरेण पर्यायस्वभावात्, शुभाशुभमिश्रपरिणामेनात्मा व्यवहारेण नरो जातः, तस्य नराकारो नरपर्यायः, केवलेनाशुभकर्मणा व्यवहारेणात्मा नारको जातः, तस्य नारकाकारो नारकपर्यायः, किञ्चिच्छुभमिश्रमायापरिणामेन तिर्यक्कायजो व्यवहारेणात्मा, तस्याकारस्तिर्यक्पर्यायः, केवलेन शुभकर्मणा व्यवहारेणात्मा देवः, तस्याकारो देवपर्यायश्चेति। अस्य पर्यायस्य प्रपञ्चो ह्यागमान्तरे दृष्टव्य इति।

(हरिगीत)

तिर्यञ्च, नारकि, देव, नर पर्याय हैं वैभाविकी।
पर्याय कर्मोपाधि वर्जित हैं कही स्वाभाविकी॥१५॥

अन्वयार्थ :—[नरनारकतिर्यक्सुराः पर्य्यायाः] मनुष्य, नारक, तिर्यञ्च और देवरूप पर्यायें, [ते] वे [विभावाः] विभावपर्यायें [इति भणिताः] कही गई हैं; [कर्मोपाधिविवर्जितपर्य्यायाः] कर्मोपाधि रहित पर्यायें, [ते] वे [स्वभावाः] स्वभावपर्यायें [इति भणिताः] कही गयी हैं।

टीका :— यह स्वभावपर्यायों तथा विभावपर्यायों का संक्षेप कथन है।

वहाँ, स्वभावपर्यायों और विभावपर्यायों के बीच प्रथम स्वभावपर्याय दो प्रकार से कही जाती है, कारणशुद्धपर्याय और कार्यशुद्धपर्याय।

यहाँ सहज शुद्ध निश्चय से, अनादि-अनन्त, अमूर्त, अतीन्द्रियस्वभाववाले और शुद्ध ऐसे सहजज्ञान-सहजदर्शन-सहजचारित्र-सहज परमवीतरागसुखात्मक शुद्धअन्तःतत्त्वस्वरूप जो स्वभाव-अनन्त चतुष्टय का स्वरूप, उसके साथ की जो पूजित पंचम भावपरिणति (उसके साथ तन्मयरूप से रहनेवाली जो पूज्य ऐसी पारिणामिकभाव की परिणति), वही कारणशुद्धपर्याय है — ऐसा अर्थ है।

सादि-अनन्त, अमूर्त, अतीन्द्रियस्वभाववाले शुद्धसद्भूतव्यवहार से, केवलज्ञान-केवल -दर्शन-केवलसुख-केवलशक्तियुक्त फलरूप अनन्त चतुष्टय के साथ की (अनन्त चतुष्टय के साथ तन्मयरूप से रहनेवाली) जो परमोत्कृष्ट क्षायिकभाव की शुद्धपरिणति, वही कार्यशुद्ध-पर्याय * है। अथवा, पूर्व सूत्र में कहे हुए सूक्ष्म ऋजुसूत्रनय के अभिप्राय से, छह द्रव्यों को साधारण और सूक्ष्म — ऐसी वे अर्थपर्यायें शुद्ध जानना (अर्थात्, वे अर्थपर्यायें ही शुद्धपर्यायें हैं)।

(इस प्रकार) शुद्धपर्याय के भेद संक्षेप में कहे।

अब, व्यंजनपर्याय कही जाती है। जिससे व्यक्त हो-प्रगट हो, वह व्यंजनपर्याय है। किस कारण ? पटादि की (वस्त्रादि की) भाँति चक्षुगोचर होने से (प्रगट होती

* सहजज्ञानादि स्वभाव-अनन्त चतुष्टययुक्त कारणशुद्धपर्याय में से केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टययुक्त कार्यशुद्ध पर्याय प्रगट होती है। पूजनीय परमपारिणामिकभावपरिणति, वह कारणशुद्धपर्याय है और शुद्ध क्षायिकभावपरिणति, वह कार्यशुद्धपर्याय है।

है) अथवा, सादि-सान्त मूर्त विजातीय-विभावस्वभाववाली होने से, दिखकर नष्ट होनेवाले स्वरूपवाली होने से (प्रगट होती है)।

पर्यायी आत्मा के ज्ञान बिना आत्मा, पर्यायस्वभावाला होता है; इसलिए शुभाशुभरूप मिश्र परिणाम से आत्मा, व्यवहार से मनुष्य होता है, उसका मनुष्याकार वह मनुष्यपर्याय है; केवल अशुभकर्म से व्यवहार से आत्मा, नारक होता है, उसका नारक-आकार वह नारकपर्याय है; किंचित्शुभमिश्रित मायापरिणाम से आत्मा, व्यवहार से तिर्यञ्चकाय में जन्मता है, उसका आकार वह तिर्यञ्चपर्याय है और केवल शुभकर्म से व्यवहार से आत्मा, देव होता है, उसका आकार वह देवपर्याय है। यह व्यंजनपर्याय है। इस पर्याय का विस्तार अन्य आगम में देख लेना चाहिए।

गाथा-१५ पर प्रवचन

गाथा १५

णरणारयतिरियसुरा पज्जाया ते विहावमिदि भणिदा।
कम्मोपाधिविवज्जियपज्जाया ते सहावमिदि भणिदा।।१५।।

नीचे हरिगीत।

तिर्यञ्च, नारकि, देव, नर पर्याय हैं वैभाविकी।
पर्याय कर्मोपाधि वर्जित हैं कही स्वाभाविकी॥१५॥

भगवान ने ऐसा 'भाखिया' ऐसा कहते हैं। '**भणिदा**' है न? भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने यह स्वभाव-विभावपर्याय का वर्णन किया है। समझ में आया? इसकी टीका।

***टीका :—* यह स्वभावपर्यायों तथा विभावपर्यायों का संक्षेप कथन है। वहाँ, स्वभावपर्यायों और विभावपर्यायों के बीच प्रथम स्वभावपर्याय दो प्रकार से कही जाती है, कारणशुद्धपर्याय और कार्यशुद्धपर्याय।** यह सब बारीक / सूक्ष्म बात है आज। आत्मा में स्वभावपर्याय और विभावपर्याय का अस्तित्व है। इन दो प्रकारों में स्वभावपर्याय जो है, उसके दो प्रकार हैं। जीवद्रव्य है न? जीवद्रव्य अर्थात् वस्तु; उसके अस्तित्व में स्वभावपर्याय और विभावपर्याय, ऐसे दो प्रकार उसके अस्तित्व में है। पर के कारण नहीं, पर में नहीं। ऐसी स्वभाव-विभावदशाओं में यहाँ स्वभावपर्याय दो प्रकार से कही गयी है।

एक कारणशुद्धपर्याय उसके अस्तित्व में है और एक कार्यशुद्धपर्याय जीवतत्त्व के अस्तित्व में है। अब कारणशुद्धपर्याय। यह आत्मा है। एकदम सूक्ष्म विषय है, यह विषय पूरे हिन्दुस्तान में कहीं चला नहीं और चलता नहीं। कहो, समझ में आया? यहाँ से शुरुआत (संवत्) २००० में इसका विस्तार हुआ था। भगवान ने यह कहा है, ऐसा कहा न? स्वभावपर्याय और विभावपर्याय यह भगवान ने कही है। उस स्वभावपर्याय के दो प्रकार करते हैं : एक कारणशुद्धपर्याय और एक कार्यशुद्धपर्याय। अब कारणशुद्धपर्याय बहुत सूक्ष्म है। उसका पहले वर्णन करते हैं। कारण कि वह अनादि की वस्तु है। कार्यशुद्धपर्याय तो बाद में सादि होती है। समझ में आया? केवलज्ञान आदि कार्यशुद्धपर्याय की सादि / आदि है और इस कारणशुद्धपर्याय की आदि नहीं है। इसलिए इसे पहले वर्णन किया जाता है। रतिभाई! यह सूक्ष्म है। समझ में आये उतना पकड़ना। समझ में आया, लो! वाह!

यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग केवलज्ञानी परमेश्वर ने स्वभावपर्याय और विभावपर्याय के प्रकार कहे हैं। अब उनमें स्वभावपर्याय। पाठ में पहले व्यंजनपर्याय है, भाई! तो उसका वर्णन बाद में करेंगे। मूल गाथा। पहले यह समझे तो उसकी व्यंजनपर्याय यथार्थ समझ में आये, ऐसा। कहते हैं कि आत्मा में... यह तो अगम-निगम की बातें हैं। सर्वज्ञ परमेश्वर के पेट में से—अन्दर ज्ञान में से आयी हुई बात है।

कहते हैं कि कारणशुद्धपर्याय किसे कहना?

जो **सहज शुद्ध निश्चय से,...** स्वाभाविक शुद्धनिश्चय से आत्मा में है। भेदवाली, व्यवहारवाली, कार्यवाली नहीं। त्रिकाल सहज स्वाभाविक शुद्धनिश्चय से। यह पहला नय लिया है। इसमें नय पहला लिया है, भाई! और कार्य में नय बाद में लेंगे। समझ में आया? तत्पश्चात् अतीन्द्रियस्वभाववाले शुद्ध सद्भूतव्यवहार से, ऐसा लेंगे। यहाँ पहले शुद्धनिश्चय लिया है। यह और क्या कहा? एक बोले तो समझ में आये नहीं पहली बार, नहीं?

इस अनादि-अनन्त आत्मा में कारण शुद्ध ध्रुवपर्याय है, वह स्वाभाविक शुद्धनिश्चय से अनादि है अर्थात् उसे पहला नय, सहजशुद्धनिश्चय पहला लिया। समझ में आया? वह अनादि-अनन्त है।

मुमुक्षु : पर्याय अनादि-अनन्त।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि-अनन्त पर्याय है। बहुत सूक्ष्म बात है। द्रव्य-गुण

अनादि, उनके साथ पर्याय भी अनादि-अनन्त है। भाई! यह बात हिन्दुस्तान में कहीं चली नहीं। यह बात जब निकली थी, तब एकाध-दो पण्डितों को पूछा तो गड़बड़ करने लगे कि यह बाहर कहाँ निकाली? वरना तो नक्शा डालना था। है न नक्शा? वह नक्शा है। १ से १९ गाथा (की पुस्तक में) नियमसार में नक्शा डालना था। उस खिड़की के पास ऊपर। उसमें समुद्र का दृष्टान्त दिया है। समुद्र-समुद्र। जो समुद्र होता है न? समुद्र, उस समुद्र के अन्दर जो पूरा समुद्र का दल है, वह अन्दर का सामान्य ध्रुव है और उसके ऊपर सरीखी सपाटी, ऐसी वट रहित ऊपर की सरीखी सपाटी है, उसे यहाँ कारणशुद्धपर्याय में गिनने में आया है। उसका दल जो ध्रुव दल सामान्य है... समुद्र होता है न यह पूरा समुद्र? उसका सामान्य दल है और ऊपर सरीखी सपाटी (होती है।) उसके ऊपर चार भाव।

मुमुक्षु : लहररहित

पूज्य गुरुदेवश्री : लहररहित। और ऊपर में चार लहर आवे, वह उपशम, क्षयोपशम, उदय, क्षायिक चार भाव की ऊपर की लहर है। इसमें नीचे डाला है। समझ में आया? नक्शा देखा है या नहीं कभी? जेठाभाई! बस, देखा नहीं। वह रहा, देखो ऊपर। इस पहले तख्ते के ऊपर। द्रव्यदृष्टि के नीचे। उस तख्ते के ऊपर है, देखो! छोटा तख्ता है। प्रकाशदासजी लिखते थे। इसमें कुछ समझ में आये ऐसा नहीं था।

कहते हैं, यह भगवान आत्मा, इसके अन्दर **सहज शुद्ध निश्चय से,...** अर्थात् स्वाभाविक शुद्ध निश्चय से। ऐसा। **अनादि-अनन्त,...** है। अनन्त चतुष्टय अन्दर अनादि-अनन्त है। उसके साथ यह कारणपर्याय भी अनादि-अनन्त है। अनन्त चतुष्टययुक्त यह कारणपर्याय अनादि-अनन्त है। **अमूर्त,...** है। यह अन्दर अमूर्त है, मूर्तपना नहीं। **अतीन्द्रियस्वभाववाले...** यह सब शब्दार्थ तो कार्य में भी आयेगा। **अतीन्द्रियस्वभाववाले...** क्या? **शुद्ध ऐसे सहजज्ञान...** त्रिकाली, स्वाभाविक ज्ञान त्रिकाली। ध्रुवज्ञान सहज त्रिकाली, **सहजदर्शन...** त्रिकाली। स्वाभाविक दर्शन-ध्रुवदर्शन त्रिकाली। **सहजचारित्र...** स्वाभाविक चारित्र त्रिकाली ध्रुवचारित्र त्रिकाली और **सहज परमवीतरागसुखात्मक...** स्वाभाविक परम वीतराग आनन्दस्वरूप त्रिकाली आहा..हा..! **सहज परमवीतरागसुखात्मक...** ये चार बोल लिये हैं। **शुद्धअन्तःतत्त्वस्वरूप...** वह शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप है। आहा..हा..! अरूपी भगवान आत्मा का यह अन्तर्दल है, अन्तःतत्त्वस्वरूप है। **जो स्वभाव-अनन्त**

चतुष्टय का स्वरूप,... स्वभाव, अनन्त चतुष्टय का स्वरूप। यहाँ स्वरूप शब्द की एक विशेषता है। कार्य में फल की विशेषता है। समझ में आया? शुद्ध अन्तःतत्त्व का स्वरूप, **स्वभाव-अनन्त चतुष्टय का स्वरूप,...** यहाँ तक तो उसके सामान्य दर्शन-ज्ञान आदि के भाव-स्वभाव वर्णन किये। ध्रुव.. ध्रुव... ध्रुव।

उसके साथ की जो पूजित पंचम भावपरिणति.... उस अनन्त चतुष्टययुक्त स्वभाव के साथ तन्मयरूप से रही हुई **पूजित पंचम भावपरिणति....** जैसे धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल, इन चार पदार्थों की उत्पाद-व्ययवाली पर्याय सदृश एकरूप त्रिकाल शुद्ध है। समझ में आया? धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल के उत्पाद-व्यय में अशुद्धता या भेद कहीं नहीं है। एक सरीखी उत्पाद-व्यय... उत्पाद-व्यय परिणतिभाव अनादि-अनन्त है। ऐसी एक आत्मा में वर्तमान पर्याय जो प्रगट है, उसके अतिरिक्त की। उन चार में प्रगटरूप पर्याय एकरूप है, तो आत्मा में प्रगटरूप पर्याय एकरूप नहीं, क्योंकि अनादि अशुद्धपर्याय है। मोक्षमार्ग उत्पाद-व्ययवाली (पर्याय है)। सम्यग्ज्ञान-भान होने पर साधकदशा में कुछ शुद्ध और अशुद्ध है। पूर्ण होने पर अकेली शुद्ध है - इतने भेद पड़ जाते हैं। एकरूप दशा जैसे चार द्रव्यों में है, वैसे इसकी उत्पाद-व्ययदशा में ऐसी एकरूप दशा नहीं है; इसलिए इसकी एकरूप दशा कारणपर्याय को ध्रुव गिनने में आया है। इसमें बहुत वंसमोर हो, ऐसा नहीं है। इसमें तो मुश्किल से पकड़ में आये ऐसा है। पण्डितजी!

मुमुक्षु : वह पर्याय सदृश है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सदृश। किसी समय होंगे नहीं इसमें। यह नियमसार की १५वीं गाथा, किसी समय थे? याद नहीं होगा। पहले मैंने पूछा था।

भगवान जीवतत्त्व, वह जैसे शुद्ध सहज निश्चय से त्रिकाल है, वैसे वह सहजशुद्धनिश्चय से उसके चतुष्टय त्रिकाल है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र और आनन्द। देखो! इसमें आनन्द भी लिया है। समकित नहीं लिया, परन्तु वह श्रद्धा त्रिकाल, यह सब इसमें आ जाता है। सहज दर्शन में डालना हो तो भी इस प्रकार से कारणदृष्टि आयी है, उसमें आ जाता है। और नहीं तो यह परमवीतराग अमृत, इसमें भी सम्यग्दर्शन (आ जाता है)। यद्यपि इसमें चारित्र पृथक् किया है।

ऐसा जो शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप, चार भाव - स्वभावरूपी अन्तःतत्त्व ध्रुवस्वरूप, जो स्वभाव अनन्त चतुष्टय का स्वरूप। कार्य में फल कहेंगे। यह तो उसका स्वरूप है। अनन्त चतुष्टय त्रिकाल स्वरूप है। **उसके साथ की जो पूजित...** इसमें **उसके साथ जो 'पूजित'...** शब्द विशेष प्रयोग किया है, और कार्य में उसके साथ की परम उत्कृष्ट शब्द प्रयोग करेंगे। दोनों में अन्तर है। समझ में आया? **अनन्त चतुष्टय का स्वरूप, उसके साथ की जो पूजित पंचम भावपरिणति...** पूजनेयोग्य, आदरनेयोग्य, सत्कार करनेयोग्य, उपादेय करनेयोग्य। त्रिकाल जो चतुष्टययुक्त स्वभाव है, उसके साथ रही हुई यह पंचम भावपरिणति, पारिणामिकभाव की परिणति, हों! है न? यह पंचम भावपरिणति है। यह उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक के उत्पाद-व्यय की नहीं है। समझ में आया?

ऐसी पंचम भाव... वह त्रिकाली, चार भाव के साथ जो पूजनेयोग्य, कि जिसमें से कार्यपर्याय प्रगट हो, ऐसी **पूजित...** अर्थात् आदरनेयोग्य। **पंचम भावपरिणति...** आत्मा में। जैसे चार द्रव्यों में एकरूप उत्पाद-व्यय पारिणामिकभाव से सरीखा है, ऐसा इसके उत्पाद-व्यय में एक सरीखा भाव नहीं है। इसलिए इसमें यह एक उत्पाद-व्यय की पारिणामिकभाव की पर्याय त्रिकाल सरीखी है, तब इसका सामान्यरूप एक सरीखा होता है। उत्पाद-व्यय वह विशेष है। मोक्ष-मोक्ष का मार्ग वह सब उत्पाद-व्यय-पर्याय का है। प्रगट आविर्भाव का है। यह शक्तिरूप पर्याय की बात चलती है। आहा..हा..!

(उसके साथ तन्मयरूप से रहनेवाली...) किसके साथ? अनन्त चतुष्टय का स्वरूप। अनन्त चतुष्टय का स्वरूप, स्व-रूप। **(उसके साथ तन्मयरूप से रहनेवाली जो पूज्य ऐसी पारिणामिकभाव की परिणति),...** परिणति कहा, परन्तु है वह पंचम भाव की परिणति। वह कोई क्षायिक परिणति या उदय अवस्था, वह अवस्था नहीं है। **वही कारणशुद्धपर्याय है—ऐसा अर्थ है।** पण्डितजी! ऐसा कभी पढ़ा था? (नहीं पढ़ा)। इस कारणशुद्धपर्याय की तो बात ही नहीं।

मुमुक्षु : यह समयसार की गाथा में भी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं.. नहीं। थोड़ी बहुत बात निकली थी। एकाध-दो पण्डितों को पूछा था। यह क्या? (तो) गड़बड़ी करने लगे। अरे! कहा, यह क्या? बाहर रखना कठिन है। समझ में आया?

मुमुक्षु : यह उत्पाद-व्ययरूप नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। पर्याय त्रिकाली ध्रुव।

मुमुक्षु : जैसे द्रव्य ध्रुव, गुण ध्रुव....

पूज्य गुरुदेवश्री : वैसे यह पर्याय ध्रुव। बस!

वही कारणशुद्धपर्याय है... (वापस ऐसा) **ऐसा अर्थ है।** कारणशुद्धस्वभावपर्याय... कारणशुद्धस्वभावपर्याय। यह स्वभावपर्याय है न? स्वभावपर्याय का भेद है न? अर्थात् स्वभावपर्याय का भेद कारणशुद्धपर्याय। स्वभावपर्याय के दो भेद में एक स्वभावपर्याय कारणशुद्धपर्याय और एक स्वभावपर्याय कार्यशुद्धपर्याय है। समझ में आया?

मुमुक्षु : स्थायी है? महाराज!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह स्थायी है। त्रिकाल। इसलिए पहले कहा न, देखो! **सहज शुद्ध निश्चय...** वहाँ से ही शुरु किया है। स्वाभाविक निश्चय सत्य, त्रिकाल निश्चय सत्य। **अनादि-अनन्त, अमूर्त, अतीन्द्रियस्वभाववाले...** उसमें (कार्यशुद्धपर्याय में) विशेषण बदलेंगे। शुद्धनिश्चय नहीं, अनादि नहीं। बाकी ये सब विशेषण उसमें आयेंगे। इसमें शुद्ध ऐसे त्रिकाली ज्ञान-दर्शन-आनन्द और चारित्र, ऐसा शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप आत्मा का अन्तःस्वभावस्वरूप। आहा..हा..! आत्मा कैसा है, उसके भान बिना, उसके आदर बिना जो कुछ किया जाये, वह सब व्यर्थ है। यह मुनिव्रत पाले या व्रत करे, छह-छह महीने की तपस्यायें करे, वह सब चार गति में भटकने के लिए है।

ऐसा जो भगवान आत्मा, जिसकी एक समय की प्रगट पर्याय में अनन्त द्रव्य, अनन्त क्षेत्र, अनन्त काल, भाव बेहद द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव, जिसके ज्ञान की प्रगट उत्पाद एक समय की पर्याय में, उसे भले असंख्य समय लगे परन्तु असंख्य समय में इतना अनन्त जिसके एक समय की पर्याय में ख्याल आता है। वह तो ख्याल तो एक समय में ही आता है, परन्तु असंख्य समय हो, तब इसका उपयोग काम करता है। इसलिए प्रगट इसकी पर्याय में बेहद क्षेत्र, बेहद काल, बेहद भाव और बेहद द्रव्य-क्षेत्र-काल, त्रिकाल, उसका ख्याल जो इसकी ज्ञान की वर्तमान उत्पाद प्रगट पर्याय में आता है। ऐसी-ऐसी अनन्त पर्यायें, जिसके अन्तर के ध्रुव स्वभाव में पड़ी हैं, उसकी कारणपर्याय में भी इतनी अनन्त शक्ति पड़ी है। समझ में आया?

जिसके एक क्षण के भाव में मर्यादारहित क्षेत्र, मर्यादारहित काल, मर्यादारहित अपरिमित शक्तियों की संख्या और अपरिमित द्रव्यों की संख्या - जिसे प्रगट एक समय की पर्याय में इतना ख्याल आता है। ऐसी जिसकी एक पर्याय के स्वभाव का सामर्थ्य भाव है। इसके अतिरिक्त शुद्धकारणपर्याय में इससे अनन्तगुना सामर्थ्य स्वभाव है। समझ में आया? यह तो अगम-निगम की बातें हैं। पण्डितजी! आहा..हा..! वाद-विवाद से यह कुछ पार पड़े, ऐसा नहीं है। वस्तु का स्वभाव ही कोई अचिन्त्य है। आहा..हा..!

ऐसी-ऐसी शक्तियाँ, जिसका स्वभाव कहा न यहाँ तो? यहाँ शुद्धकारणस्वभाव कहा। ऐसा कहा न? शुद्धकारणपर्यायस्वभाव, शुद्धकारणपर्यायस्वभाव। स्वभाव तो पहले लिया था, इसलिए अन्त में कहा कि वह कारणशुद्धपर्याय है। स्वभावपर्याय के दो भेद हैं न... स्वभावपर्याय के दो भेद हैं। समझ में आया? स्वभाव की दशा के पर्याय के ये प्रकार हैं। अन्त में भी कहेंगे। शुद्धपर्याय के भेद संक्षेप से कहे। ऐसा आता है न? भाई! अन्त में आता है न? '**उक्तः समासतः शुद्धपर्याय-विकल्पः।**''**शुद्धपर्याय-विकल्पः।**' संस्कृत है। यह सब शुद्धपर्याय के भेदों का यह वर्णन किया। उसकी एक पर्याय का यह वर्णन किया। आहा..हा..!

पहला शुद्धनिश्चय। स्वाभाविक अकेला नहीं, परन्तु वापस शुद्धनिश्चय लिया। त्रिकाल-त्रिकाल शुद्धनिश्चयभाव। फिर भले नय नहीं डाला। समझ में आया? परन्तु यह सहजशुद्धनिश्चयभाव **अनादि-अनन्त, अमूर्त, अतीन्द्रियस्वभाववाले...** एक बात। **और शुद्ध ऐसे सहजज्ञान-सहजदर्शन-सहजचारित्र...** सहज। उत्पाद-व्ययरूप, प्रगटरूप नहीं। समझ में आया? आहा..हा..! इस परमात्मा के दरबार में अन्दर ऐसा भरा है, ऐसा कहते हैं। तू स्वयं परमात्मा है, हों! आहा..हा..!

मुमुक्षु : .....उत्पाद-व्यय तो रहा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यहाँ उत्पाद-व्यय है नहीं। उत्पाद-व्यय की पर्याय तो बाद में कार्यस्वभावपर्याय में लेंगे। समझ में आया? पकड़ में आये, उतना पकड़ना, परन्तु कुछ गम्भीर गहरी बात है, इतना तो लक्ष्य में रहे न! आहा..हा..!

वही कारणशुद्धपर्याय है—ऐसा अर्थ है। कारणशुद्धपर्याय इत्यर्थः। संस्कृत किया है। ओहो..हो..! यह बात तो पहले कर गये हैं। इसकी टीका गणधर से परम्परा से

की गयी है। मेरे जैसे मन्दबुद्धि का क्या काम है ? आहा..हा.. ! भाई ! पहली बात आ गयी है न ? गणधरों से परम्परा से जिसका अर्थ चला आया है। आहा..हा.. ! अरे ! महाव्रतधारी हैं, बापू ! सन्त हैं, मुनि हैं, दिगम्बर हैं। मात्र नग्न ऐसा नहीं। ऐसा नग्नपना तो अनन्त बार लिया और पंचम महाव्रत की क्रियाएँ भी अनन्त बार कीं। वह वस्तु नहीं। वह कोई धर्म नहीं। समझ में आया ? वह तो राग की पर्याय भी वास्तव में पुद्गल की पर्याय है। उसे कठिन पड़ता है। आहा..हा.. !

भगवान आत्मा चैतन्य का पिण्ड प्रभु, क्षेत्र भले असंख्य प्रदेश हो, परन्तु उसके भाव तो अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. स्वभावभाव से भरपूर हैं। जिसका स्वभाव है, उसे मर्यादा क्या ? जिसका स्वभाव है, उसके सामर्थ्य की मर्यादा / परिमितता क्या उसकी ? ऐसा भगवान आत्मा अनादि-अनन्त, जिसके स्वाभाविक गुण आदि से भरपूर और उन गुणसहित का तथा पूजित पंचम भावपरिणति भी साथ में रही हुई। आहा..हा.. ! उसे यहाँ कारणशुद्धपर्याय कहा जाता है। वह कारणशुद्धपर्याय पूजनीय है, कहते हैं। आहा..हा.. !

मुमुक्षु : .....सब गुण....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब-सब इकट्ठे। यहाँ कोई एक पर्याय की... ऊपर में से... बात करते हैं। पूरा दल तो है ही परन्तु ऊपर की बात करते हुए सब इकट्ठा अभेद है। यह तो ऊपर में से इतना आवे तो सब दल की क्या बात करना ? ऐसा अभेद है। आहा..हा.. ! समझ में आया ? यह तो वीतराग के विज्ञान का विज्ञान है। इसे स्वभाव शब्द प्रयोग किया था और इसे अनन्त चतुष्टय का स्वरूप शब्द प्रयोग किया था। इसका स्वरूप है न ? ऐसा कहते हैं। अपना रूप ही ऐसा है। ऐसी उनके साथ रही हुई यह... अहो ! जिसे उपादेयरूप से आदरणीय हो तो वह शुद्धकारणपर्याय है। कहो, समझ में आया ?

मुमुक्षु : द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों....

पूज्य गुरुदेवश्री : तीनों एकरूप पारिणामिकभाव से है। बस। धर्मास्ति आदि में पारिणामिकभाव से द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों हैं। उत्पाद-व्यय भी उनके पारिणामिकभाव से हैं। धर्मास्ति, अधर्मास्ति में उत्पाद-व्यय पारिणामिकभाव से है। इसमें पारिणामिकभाव से उत्पाद-व्यय नहीं है। इससे इसे यह पारिणामिकभाव से कारणशुद्धपर्याय त्रिकाल है। ऐसा यहाँ सिद्ध किया है। समझ में आया ?

श्रीमद् में ऐसा टुकड़ा (वाक्यांश) एक बार रखा था। बड़े शब्द थे परन्तु वहाँ अर्थ नहीं। श्रीमद् में एक शब्द है। उसमें पुराने में बड़े अक्षर हैं। अब उसने निकाल दिया था। दूसरे ने बड़ा अक्षर निकाल दिया था। उसे कुछ नहीं लगा होगा। है न वह जैन? जैनधर्म में नहीं। है? ५०० ? वह पृष्ठ फट गया है। यह है, लो! ३६वाँ बोल है। ३५ में यह है कि सिद्धत्वपर्याय सादि-अनन्त और मोक्ष अनादि-अनन्त। यह जैनदर्शन मार्ग का स्वरूप है, ऐसा कहते हैं। तब पारिणामिक पदार्थ निरन्तर साकार परिणामी होता है, तो भी अवस्थित... फट गया है, हों! साकार परिणामी हो तो भी अवस्थित परिणामी अर्थात् क्या? बड़ा अक्षर रखा है, हों! परन्तु फिर वापस निकाल दिया है। परन्तु उसका अर्थ...

मुमुक्षु : समझे न हों, इसलिए निकाल दिया होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु साकार शब्द बड़ा पड़ा था। परिणामी पदार्थ निरन्तर स्व-आकार परिणामी होता है वास्तव में। भेद नहीं होता, तथापि उसमें अव्यवस्थितपना, वह भी एक जैनमार्ग की स्थिति है। यह तब (संवत्) २००० में देखा था। देखो! वह नया है न? दूसरा समयसार है नया। वह है न अपने। स्व आकार परिणामी, ऐसा कहते हैं। जैसा अपना स्वभाव है, उस आकार से ही परिणामी होना चाहिए, तथापि पर्याय में वापस अव्यवस्थितपना। उत्पाद-व्यय में अव्यवस्थितपना। आहा..हा..! स्व-आकार परिणाम में व्यवस्थितपना, तथापि उत्पाद-व्यय में अव्यवस्थितपना। यह तब यह निकाला था। जैनमार्ग यह है। उनका मस्तिष्क बहुत-श्रीमद् का क्षयोपशम बहुत। ऐसा क्षयोपशम पुरुष हिन्दुस्तान में उस समय कोई नहीं था। इतना काम किया हुआ, परन्तु अमुक स्थिति बाहर नहीं आयी, उम्र छोटी और काम कर गये। देखो, यह! यह स्पष्ट शब्द हैं, उसमें फट गया है।

परिणामी पदार्थ निरन्तर स्व-आकार परिणामी। स्व-आकार इतने बड़े अक्षर में है। तो भी अव्यवस्थित परिणामीपना, अनादि से हो वह केवलज्ञान में भाष्यमान... यह सब विवाद उठाते हैं न? अनन्त हों वह किस प्रकार ज्ञात हों? अनादि हो वह किस प्रकार ज्ञात हो? परन्तु अनादि, अनादि ज्ञात होता है। जाननेवाला जैसे जानता है, वैसा है। है, वैसा जानता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न परिणामी पदार्थ निरन्तर स्व-आकार परिणामी होता है।

अव्यवस्थित परिणामी पर्याय में, तथापि उसका स्वभाव स्व-आकार परिणामी होता है। श्रीमद् राजचन्द्र। समयसार में नहीं। जैनधर्म की व्याख्या है उसमें। जैनमार्ग इस प्रकार से होता है। लोकसंस्थान, धर्म, अधर्म, आकाशद्रव्य जैनमार्ग में ऐसा स्वरूप है। जैन में है। अरूपीपना सूक्ष्म इत्यादि... इत्यादि की बात है। विभावितदशा पारिणामिकभाव से। विभाव का उपादानकारण वीर्य आदि का आत्मगुण का चेतनपना। जैनमार्ग में ऐसी व्याख्या है। समझ में आया?

मुमुक्षु : पर्याय में भी स्व-आकार परिणामी।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में भी स्व-आकार परिणामी होता है। एकरूप, ऐसा। और तथापि पर्याय में उत्पाद-व्यय में अव्यवस्थितपना वापस। स्व-आकार पर्याय परिणाम हों, तथापि उत्पाद-व्यय में अव्यवस्थितपना। यह एक जैनमार्ग का स्वभाव है कि जो वीतराग में देखा है और वैसा स्वरूप है।

मुमुक्षु : उत्पाद-व्यय है, इसलिए अव्यवस्थित...

पूज्य गुरुदेवश्री : अव्यवस्थित है न? उत्पाद-व्यय अव्यवस्थित है। उसमें एकपना कहाँ है। उत्पाद-व्यय में एकपना नहीं है। संसार है, वहाँ मिथ्यात्व का उत्पाद है। मोक्षमार्ग में निर्मल पर्याय और मलिन का थोड़ा उत्पाद होता है। सिद्ध में पूर्ण सिद्धपर्याय होती है अर्थात् उत्पाद-व्यय में एक सरीखा स्व आकार परिणाम नहीं रहा। चार द्रव्य में तो एक आकार उत्पाद-व्ययरूप है। ऐसा एक आत्मा में कारणपर्यायरूप स्व-आकार परिणामी पर्याय त्रिकाली अनादि-अनन्त है। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म है, जाधवजीभाई!

मुमुक्षु : पूर्ण द्रव्य। द्रव्य, गुण और पर्याय से।

पूज्य गुरुदेवश्री : ये तीनों अभेद एकरूप हैं। उत्पादरहित चीज़। उत्पाद-व्यय व्यवहार है। ये तीनों होकर निश्चय है। समझ में आया? उत्पाद-व्यय, वह पर्याय व्यवहार है। सिद्धपर्याय भी व्यवहार है। आहा..हा..! वह अभूतार्थ है। ये तीन होकर भूतार्थ हैं। आहा..हा..! पकड़ में आये उतना पकड़ना। इसमें कुछ... लो, यह कारणशुद्धपर्याय की व्याख्या हुई। अब कार्यशुद्धपर्याय। यह उत्पाद-व्ययवाली।

मुमुक्षु : उसमें भी स्वभाव लिया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वभाव लिया है। कार्य भी स्वभाव है। पर्यायस्वभाव। एक

अपेक्षा से पर्यायस्वभाव लिया है, एक अपेक्षा से भाव की अपेक्षा से विभावभाव लिया है, एक अपेक्षा से कर्मरहित लिया है यहाँ, एक अपेक्षा से पंचास्तिकाय में कार्यभाव को कर्म बिना कार्य नहीं, ऐसा लिया है। अपेक्षा समझनी चाहिए न, भाई!

फिर से। केवलज्ञान की पर्याय को स्वभाव क्यों लिया? यहाँ स्वभावपर्याय के दो भेद चलते हैं। एक कारणस्वभावपर्याय, कार्यस्वभावपर्याय। केवलज्ञान तो यहाँ भाव की अपेक्षा से तो क्षायिकभाव को विभावभाव कहा पहले और पंचास्तिकाय में कहा, कर्म बिना चार भाव होते नहीं। अपेक्षा रही न, कर्म के अभाव की तो अपेक्षा रही न! क्षायिकभाव, इतनी अपेक्षा। वह अपेक्षा यहाँ नहीं गिनी है।

यहाँ तो चार ज्ञान में कर्म के वर्तमान निमित्त की विद्यमानता है, इसलिए उन्हें विभाव गिना और विद्यमानता नहीं है, इसलिए उसे स्वभाव कहकर कार्य केवलज्ञानस्वभाव कहने में आया। कितने प्रकार? ऐई! वजुभाई! पहले कहा था कि केवलज्ञान स्वभाव है। चार ज्ञान विभाव है। ऐसा कहा था न? भाई! चार ज्ञान विभाव है, केवलज्ञान स्वभाव है - एक बात। और कहा कि केवलज्ञान विभावभाव है। चार भाव में उसे गिनने में आया है, इसलिए विभावभाव है, वह परभाव है। परमपारिणामिकभाव की अपेक्षा से विभाव अर्थात् विशेष भाव है, अपेक्षित है, पर के निमित्त के अभाव की अपेक्षा इसमें है, इसलिए इसे विभावभाव कहा जाता है। यहाँ वर्तमान इसे निमित्तपने की कर्म की अस्ति नहीं है, इसलिए इसे स्वभाव कार्यपर्याय कहा गया है। समझ में आया? कहो, प्रवीणभाई! इसके लिए सब भावनगर से आये हैं। यह तो अन्दर के खजाने की बातें हैं। खजाने में क्या-क्या भरा है। आहा..हा..! समझ में आया?

पहले चार ज्ञान में उन्हें विभाव गिनकर और केवलज्ञान को स्वभाव कहा। वापस पारिणामिकभाव की अपेक्षा से चार भाव में क्षायिकभाव को विशेष पर्याय की अपेक्षा से विभावभाव कहा था। यहाँ इसे-केवलज्ञान को स्वभावकार्यपर्याय कहते हैं। वर्तमान निमित्त का अभाव है, इससे इसे स्वभाव कहा जाता है। गजब, भाई! यह बात दिगम्बर शास्त्रों के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं है। होती ही नहीं। यह तो परम्परा सत्य है। केवलज्ञानी परमात्मा का परम्परा से कहा हुआ सत्य है। इसलिए कहा न कि गणधरों से रची हुई यह टीका है, मैं तो रचनेवाला कौन? आहा..हा..!

मुमुक्षु : मार्ग शास्त्र में तो है नहीं। उसके स्पष्टीकरण की शुरुआत तो यहाँ से हुई है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दिगम्बर सन्तों ने मार्ग सरल कर दिया है। मुनियों ने... आहा..हा..! सनातन सत धोध उत्सर्गमार्ग भगवान का, उसमें जन्मे, उसमें सन्त हुए, उन्होंने तो केवलज्ञान को ऐसे हथेली में बता दिया है और उसके कारणरूप वस्तु कैसी? इसकी स्पष्टता अन्यत्र कहीं है नहीं। परन्तु बाड़ा में उपजे, इसलिए इसे समझ में आ जाए, ऐसा नहीं है।

अब कार्यस्वभावपर्याय की व्याख्या में पहला नय न लेकर, पहले सादि-अनन्त लिया है। उसमें (कारणशुद्धपर्याय में) पहले **सहज शुद्ध निश्चय...** था। यहाँ सादि-अनन्त लिया है। नय बाद में लेंगे। समझ में आया? **सादि-अनन्त,...** वह **शुद्ध निश्चय से, अनादि-अनन्त,...** ऐसा था। यहाँ तो नयी पर्याय प्रगट हुई है; इसलिए प्रगट हुई पर्याय का वर्णन सादि-अनन्त कहकर, फिर क्या है? सदभूतव्यवहारनय है, ऐसा कहेंगे। वह (कारणपर्याय) तो प्रगट हुई नहीं है, वह तो अनादि ऐसी की ऐसी है, है और है। समझ में आया? ठीक, यह अब गुजराती में सब आया, हों! हिन्दी में ऐसा नहीं आ सकता।

सादि-अनन्त,... केवलज्ञान वह सादि-अनन्त है। केवलज्ञान अनादि-अनन्त नहीं है। पारिणामिकभाव से नहीं है। कारणपर्याय पारिणामिकभाव से अनादि-अनन्त है। यह क्षायिकभाव है, इसलिए सादि-अनन्त है। नयी प्रगट होती है। केवलज्ञानदशा नयी प्रगट होती है।

मुमुक्षु : वह अनादि-अनन्त और यह सादि-अनन्त।

पूज्य गुरुदेवश्री : सादि-अनन्त। वह अमूर्त, यह भी अमूर्त। वह अतीन्द्रिय स्वभाववाली, यह भी अतीन्द्रिय स्वभाववाली। अब यहाँ अन्तर पड़ा।

शुद्धसद्भूतव्यवहार से,... वहाँ **सहज शुद्ध निश्चय से,...** पहले डाला था। कहते हैं कि केवलज्ञान शुद्ध है, सद्भूत है और व्यवहार है। एक समय की पर्याय, इसलिए व्यवहार है। आहा..हा..! समझ में आया?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्ध है, सद्भूत है, अस्ति है, एक समय की पर्याय भी अस्ति है, परन्तु एक अंश है; इसलिए व्यवहार है। समझ में आया? सब सूक्ष्म तो है परन्तु अब। यह हीराभाई साथ आये हैं न। तीन व्यक्ति आये हैं? तीन। ठीक। आहा..हा..!

अब वह कार्य लेना है न? वह किसके साथ रहा हुआ है, ऐसा सिद्ध करना है। वह

(कारणपर्याय) त्रिकाल साथ में रही हुई कहा था न? अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख और आनन्द, चारित्र और आनन्द, उनके सहित कारणपर्याय थी। ये कार्यपर्याय किसके सहित, किसके साथ है? आहा..हा..! **केवलज्ञान-केवल-दर्शन-केवलसुख-केवलशक्तियुक्त...** ठीक। यह वीर्य वहाँ लिया परन्तु वहाँ अनन्त चतुष्टय का स्वरूप लिया था। यहाँ लिया **केवलशक्तियुक्त फलरूप...** यह फलरूप, इतना अन्तर डाला है। वह तो त्रिकाली स्वरूप था, वह कोई फलरूप नहीं था। यह तो फल आया है। अनन्त चतुष्टय त्रिकाल और कारणपर्याय, उसका आश्रय करके फलरूप पर्याय कार्यशुद्धपर्याय प्रगट हुई है। समझ में आया? उसमें स्वभाव अनन्त चतुष्टय का स्वरूप था। त्रिकाल है, इसलिए (ऐसा था)। यह तो फलरूप दशा है, यह फल पका।

फलरूप अनन्त चतुष्टय के साथ की... है न? वे चार पहले कहे थे न? उसमें भी पहले चार कहे थे, और फिर अनन्त चतुष्टय कहा था। शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप वहाँ कहा था। समझ में आया? यह तो पर्याय प्रगट है, इसलिए अन्तःतत्त्वस्वरूप नहीं। उसमें **शुद्धअन्तःतत्त्वस्वरूप जो स्वभाव-अनन्त चतुष्टय का स्वरूप,...** ऐसा। यह तो **अतीन्द्रियस्वभाववाले शुद्धसद्भूतव्यवहार से, केवलज्ञान-केवलदर्शन-केवलसुख-केवलशक्तियुक्त फलरूप अनन्त चतुष्टय के साथ की...** ऐसा। वह अन्तःतत्त्वस्वरूपवाली यह नहीं। अन्तःतत्त्व तो पारिणामिकभाव से त्रिकाल है।

फलरूप अनन्त चतुष्टय के साथ की (अनन्त चतुष्टय के साथ तन्मयरूप से रहनेवाली)... वहाँ कहा था कि **उसके साथ की जो पूजित पंचम भावपरिणति...** जबकि यह उसके साथ परम उत्कृष्ट क्षायिक, इतना भेद कर दिया है। वह **साथ की जो पूजित पंचम भावपरिणति...** तब यह **परमोत्कृष्ट क्षायिकभाव की शुद्धपरिणति,...** पूजित-पूजित शब्द यहाँ नहीं। आहा..हा..! देखो न!

मुमुक्षु : पूजित आदरणीय....

पूज्य गुरुदेवश्री : आदरणीय वह त्रिकाल। उसके आदर में से फलरूप यह आती है। समझ में आया? यहाँ **परमोत्कृष्ट...** शब्द प्रयोग किया है। चार भाव है न? उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक,... उनसे भी यह शुद्ध परिणति। **वही कार्यशुद्ध-पर्याय है।** लो। उसमें थ न, **वही कारणशुद्धपर्याय है...** यहाँ कहते हैं, **वही कार्यशुद्ध-पर्याय है।**

(*श्रोता :* प्रमाण वचन गुरुदेव!)